Yog ke Mukhya Marg

Course -

Post Graduate Diploma in Yogic Studies

Paper - I

Lesson presented by-

Dr. Prabhakar Devraj

Co-ordinator, Yogic Studies

E-mail - drpdevraj@gmail.com

प्रिय जिज्ञासु ,

योग एक विषय के रुप में अन्य विषयों से अत्यंत भिन्न है । जिस प्रकार पानी में उतरे बिना आप तैरना नहीं सीख सकते या साइकिल पर चढ़े बिना साइकिल चलाना नहीं सीख सकते, उसी प्रकार अभ्यास के सागर में उतरे बिना योग नहीं सीख सकते । योग की विद्या में आप स्वयं प्रयोगकर्ता हैं , प्रयोगशाला हैं और प्रयोग के फल के प्राप्तिकर्ता हैं । अतः नियमित रूप से अभ्यास करें।

योग के मुख्य मार्ग

योग का जो स्वरूप आज हमारे सामने है वह व्यायाम के रूप में है या चिकित्सा के रूप में। पिछले कुछ वर्षों में इसका जो प्रसार-प्रचार राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुआ है, उससे योग की स्वीकार्यता समाज के हर तबके तक पहुँची है। परंतु जनसामान्य में योग की जो अवधारणा बनी है वह अत्यन्त सीमित है । लोग समझते हैं कि योग का अर्थ है कुछ आसन, प्राणायाम तथा अन्य क्रियाएं। साथ ही यह कि इससे बीमारियां दूर होती हैं, मनुष्य स्वस्थ होता है, तनाव से मुक्ति मिलती है, आदि । इसी समझ के साथ लोग योग को अपना रहे हैं । दूरदर्शन, प्रेस तथा अन्य डिजिटल मीडियम के साधनों का अनुसरण कर वह योग के अभ्यास को अपनी दिनचर्या में शामिल कर रहे हैं। इसमें मुख्य प्रयोजन स्वास्थ्य ही रहता है । यह विश्वास और भी गहरा हो गया है जब योग करने की सलाह डॉक्टरों तथा मानसिक चिकित्सकों द्वारा दी जाने लगी है। मेडिकल साइंस की पुस्तकों में भी योग की चर्चा हो रही है और इसे लाभदायक बताया जा रहा है। यह सही भी है । परंतु योग के छात्र या जिज्ञासु के लिए यह धारणा पर्याप्त नहीं है। यह जानना आवश्यक है कि योग का वास्तविक स्वरूप क्या है। योग का क्षेत्र अत्यंत विशाल है । इतना विशाल है कि इसका परिचय केवल कुछ शब्दों में देना संभव नहीं है ।

पुरातात्विक अवशेष तथा संबंधित अन्य स्त्रोतों से प्राचीन सभ्यताओं के बारे में जो जानकारी मिलती है, उससे स्पष्ट होता है की सभ्यता के प्रारंभिक काल में भी योग किसी न किसी रूप में प्रचलित था। भारतीय दर्शनशास्त्र के ग्रंथों तथा धार्मिक शास्त्रों में योग का विस्तृत विवरण मिलता है। उपनिषदों में योग से सम्बंधित स्पष्ट निर्देश मिलते हैं ।अतः यह जानना आवश्यक है कि हमारे प्राचीन ग्रंथों में वर्णित योग का स्वरूप क्या था। वह केवल रोगों की चिकित्सा अथवा फिटनेस तक सीमित नहीं था। उसका रूप अत्यंत व्यापक था। उसमें मनुष्य के अस्तित्व के समस्त आयाम - शरीर, मन, समाज, आत्मा, परमात्मा सभी सम्मिलित थे।

योग के प्रमुख एवं प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में स्थापित श्रीमद्भगवद्गीता में योग के विविध रूपों का वर्णन है। गीता का मूल मंत्र है कर्मयोग। गीता के दूसरे अध्याय में इसकी विस्तृत चर्चा मिलती है। उपनिषदों में योग के अनेक पहलुओं पर विस्तार से वर्णन मिलता है । इसके बाद के काल में महर्षि पतंजलि का राजयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है । इसमें प्रतिपादित योग ऐसा मार्ग है जिस पर चलकर कोई भी व्यक्ति ,गृहस्थ या संन्यासी, योग के उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है ।योग की ऐसी स्पष्ट और वैज्ञानिक अवधारणा अन्यत्र दुर्लभ है । इसके अतिरिक्त घेरंड संहिता, गोरक्ष संहिता, योग वाशिष्ठ, हठयोग प्रदीपिका आदि ग्रंथों से भी योग का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है।

अध्ययन के दृष्टिकोण से हम इन स्त्रोतों से प्राप्त योग की कतिपय अवधारणाओं की चर्चा करेंगे ।

1. ऋग्वेद -

ईश्वर की कृपा से हमें योग सिद्ध होकर ऋतंभरा प्रज्ञा प्राप्त हो।

2. अथर्ववेद -

यह शरीर आठ चक्र तथा नौ द्वारों वाली देवताओं की अयोध्यापुरी है, जिसमे ज्योति हिरण्यगर्भ कोश से आवृत्त है ।

3. श्रीमद्भगवद्गीता -

अध्याय 2 का श्लोक 48 देखें

सिद्धि तथा असिद्धि में समान बुद्धियुक्त होना ही योग है।अर्थात् किसी लक्ष्य की प्राप्ति में आप सफल हों या असफल हों, आपके भाव समान रहने चाहिये।न खुश हों न दुखी हों।

अध्याय 2 का श्लोक 47 देखें

कर्म करने में ही तेरा अधिकार है उसके फल में कभी नहीं ।इसलिए तू कार्य का हेतु मत बन और न अकर्म का आश्रय ले।

अध्याय 2 का श्लोक 50 देखें

योग ही कर्मों में कुशलता है।

मनुष्य कर्म किए बिना नहीं रह सकता।यह मनुष्य की प्रकृति है।सभी कर्मों में समत्वयोग श्रेष्ठ है।अतः इसका ही अभ्यास करना उचित है।

4. महर्षि पतंजलि (राजयोग)-

चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

5. महर्षि घेरंड *(*घटस्थ योग*)*-

ईश्वर ने शरीर रूपी घड़े में इंद्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार सब भर दिया है ।यह कच्चे घड़े के समान है। कच्चा घड़ा जल भरने पर नष्ट हो जाता है। योग की साधना अग्नि के रूप में शरीर को पकाकर शुद्ध एवं मजबूत बनाती है ।

6. योगी स्वात्माराम *(*हठ योग*)*-

योग की उच्चतम अवस्था की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम हठयोग की सिद्धि आवश्यक है।

योग के मुख्य मार्ग :

सिद्ध योगियों के उपर्युक्त वचनों से हमें योगविद्या के कुछ मुख्य मार्गों का परिचय मिलता है, जो इस प्रकार हैं :-

1. कर्मयोग -

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भु मातेसंगोस्त्वकर्मणि ।।"

गीता का यह श्लोक (अध्याय 2, श्लोक 47) कर्मयोग की पूरी परिभाषा है। हम अपने दैनिक जीवन में काम तो करते हैं लेकिन सदैव ही उससे हमारी कोई अपेक्षा जुड़ी होती है। हमेशा हम किसी न किसी फल की प्राप्ति के लिए ही कार्य करते हैं। कर्मयोग के सिद्धांत के अनुसार कर्मफल का त्याग और कर्म करने का हेतु नहीं बनना, ही कर्म योग है। यह भाव कि कर्म हम नहीं करते, कोई हमसे करवाता है ।''नाहम् कर्त्ता हरि कर्त्ता हरि कर्त्ता ही केवलम्"। अर्थात् हम केवल निमित्त हैं, कार्य करने वाले नहीं। कार्य करने वाला केवल ईश्वर है।इस उक्ति का कुछ लोग गलत अर्थ भी लगाते हैं । उनकी व्याख्या होती है कि इस आधार पर चोरी का आरोप भी चोर पर नहीं जाता। परंतु ऐसा मानना इसलिए गलत है कि क्योंकि चोरी स्वयं में अकरणीय और असामाजिक कार्य है।

इस प्रकार कर्मयोग के अभ्यास में चार तत्व आते हैं ।अर्थात् यदि कार्य करते समय हम इन तत्वों के प्रति सजग रहें तो हर कार्य कर्मयोग बन जाता है ।

प्रथम तत्त्व -

हम यह न समझें कि मैंने अमुक कार्य को किया है , या अगर मैं नहीं करता तो यह कार्य नहीं होता। ऐसा सोचना अहंकार है । चाहे कितना भी बड़ा कार्य हो ईश्वर किसी न किसी से करवाता ही है। हमारे करने या नहीं करने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

द्वितीय तत्त्व -

हम केवल इसलिए कार्य नहीं करें कि हमारा उसमें स्वार्थ है या लाभ है । कार्य करना हमारा कर्तव्य है, इसके लिए कार्य करें ।

तृतीय तत्त्व -

हम अकर्मण्य न बनें। स्वयं के जीवन के उत्थान एवं मानवमात्र की भलाई की दिशा में सदैव कर्मरत रहें ।

चतुर्थ तत्त्व -

कार्य वही करें जो करने योग्य हो, अर्थात वही करें जो कर्तव्य हो। किसी भी कार्य को करने के पहले यह निश्चित कर लेना चाहिए कि जो कार्य हम करने जा रहे हैं वह करने योग्य है या नहीं।

इन चार तत्त्वों का अनुसरण करते हुए जीवन जीना ही कर्मयोगी का जीवन है।

2. ज्ञान योग

ज्ञानयोग का आधार है अपनी बुद्धि के पार जाना, क्योंकि हमारी बुद्धि हमारी अंतःप्रज्ञा को ढके रहती है। सांसारिक बुद्धि शुद्ध तर्क पर आधारित होती है।तर्क बुद्धि का आवरण हमारी अंतःप्रज्ञा पर चढ़ा होता है जिससे हमें आत्म साक्षात्कार नहीं हो पाता। विज्ञान हमें तर्कपूर्ण सोचने का आधार प्रदान करता है, लेकिन जब हम आत्म विश्लेषण करते हैं तो ऐसा समय आता है, जब इंद्रियजनित ज्ञान और तर्क बेकार हो जाते हैं । वहां हमारा अंतर्ज्ञान हमारा मार्गदर्शक बनता है। कुल मिलाकर ज्ञानयोग बुद्धि के द्वारा ही बुद्धि के पार जाने की विधि है। इसको सीढ़ी के द्वारा समझा जा सकता है। किसी भी ऊँचे स्थान पर पहुचने के लिए हम सीढ़ी लगाते हैं।जब वहाँ पहुँचते हैं तो सीढ़ी को छोड़ देते हैं। हमारा अंतिम कदम वह होता है जो सीढ़ी को छोड़कर अपने गंतव्य पर रखा जाता है। यदि हम सीढ़ी को ही पकड़े रहें तो

ऊँचाई पर नहीं पहुँच सकते।इसी प्रकार ज्ञान योग की साधना में बुद्धि का उपयोग होता है।एक क्षण आता है जब बुद्धि का त्याग कर देना होता है।

ज्ञानयोग की साधना के कुछ मुख्य तत्त्व हैं , जिनका अनुसरण कर ज्ञान योग की साधना का प्रारम्भ किया जा सकता है ।

प्रथम तत्त्व -

विश्वास नहीं अनुभव -

मनुष्य अपने जीवन के प्रारम्भ से देख - सुनकर ही सीखता है। इस क्रम में वह अनेक ऐसी बातें भी सीख लेता है, जो समाज में प्रचलित हैं मगर जिनका कोई विवेकपूर्ण आधार नहीं होता - कुछ अज्ञान के कारण तथा कुछ अंधविश्वास के कारण। उदाहरण के लिए, बच्चा पूछता है कि भगवान कहाँ है तो पिता आकाश की तरफ बता देते हैं ।या, उसे यह बताया जाता है कि बिल्ली रास्ता काट दे तो आगे नहीं जाना चाहिए।या, भगवान को प्रसाद चढ़ाने से परीक्षा में अच्छे नम्बर आते हैं।आदि।

बाह्य आडंबर, कर्मकाण्ड , रूढ़ियाँ ज्ञानयोग से साधक के लिए सबसे कठिन शत्रु हैं । इनसे बचना और विरोध करना सहज नहीं होता। इसके लिए साधक को ऐसी स्थितियों से स्वयं गुजरकर परीक्षण करने की जरूरत होती है। यह एक साहस पूर्ण कार्य है।

दूसरे से प्राप्त ज्ञान को बिना स्व - परीक्षण के मान लेना और उसका अनुसरण करना ज्ञानयोग के साधक के लिये व्यर्थ है।

द्वितीय तत्त्व -

आत्म परीक्षण एवं आत्म विश्लेषण -

ज्ञान योगी सर्व प्रथम स्वयं की शक्तियों तथा दुर्बलताओं का आकलन करता है। ज्ञान योग के मार्ग पर पग रखने के पूर्व उसे अपनी क्षमताओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए उसे तटस्थ आत्म विश्लेषण की आवश्यकता होती है।

तृतीय तत्त्व -

अपनी प्रकृति का ज्ञान -

हर मनुष्य का अपना स्वभाव होता है। वह कुछ चीज़ों को पसंद करता है, कुछ को नापसंद करता है। कुछ विचार आकर्षित करते हैं, कुछ विकर्षित करते हैं। कुछ विषयों की ओर उसका नैसर्गिक रुझान होता है। ज्ञानयोग के मार्गी को अपनी प्रकृति का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। तभी वह आगे अपने मार्ग का निर्धारण कर पाता है।

चतुर्थ तत्त्व -

आंतरिक एकत्व का अनुभव -

हमारी आंतरिक शक्तियाँ विभिन्न दिशाओं में बिखरी हुई रहती हैं। प्रारम्भ में तो ये बाहरी संसार से जुड़ी रहती हैं।जब साधक आत्म विश्लेषण करता है तो उसे अपने मन के आंतरिक बिखराव का पता चलता है। अगर हमारी आंतरिक शक्तियाँ बिखरी हुई हों तो ज्ञानयोग की यात्रा आगे नहीं चल पाती।

3. भक्ति योग

संपूर्ण समर्पण द्वारा ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग भक्ति योग है । इसके अंतर्गत व्यक्ति अपने अहंकार का बिल्कुल त्याग कर अपने गुरु देवता या इसके प्रति समर्पित हो जाता है । इससे व्यक्ति की संपूर्ण मानसिक शक्ति एक ही दिशा में प्रवाहित होने लगती है। भक्ति योग का सबसे विशेष गुण यह है कि यह अत्यंत शीघ्र फल देने वाला होता है । लेकिन यह सब के लिए सहज नहीं है । विशेषकर तर्क युक्त विचार रखने वाले और तर्क बुद्धि को ही सबकुछ समझने वाले इसका लाभ नहीं उठा सकते। भावुक एवं श्रद्धालु मानसिकता के लोग ही इस मार्ग द्वारा साधना में सफल होते हैं।

भक्ति योग के दो मुख्य तत्त्व हैं - प्रेम तथा समर्पण।

4. हठयोग

हठयोग का विस्तृत विवरण हमें स्वामी स्वात्माराम की पुस्तक 'हठयोग प्रदीपिका' में मिलता है ।इस ग्रंथ में उन्होंने शरीर को शुद्ध करने की क्रियाओं का व्यापक वर्णन किया है । जिससे हम षट्कर्म के नाम से जानते हैं । इसके अनुसार आसन तथा प्राणायाम के साथ ही षट्कर्म की साधना आवश्यक है, जिससे शरीर शुद्ध होकर साधना के उपयुक्त हो सके। शुद्धि के बाद प्राणायाम के द्वारा 'हं' तथा 'ठं' नाड़ियों में संतुलन स्थापित कर सुषुम्ना को जागृत किया जाता है। इससे समाधि तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त होता है।

5. राजयोग

महर्षि पतंजलि का योग 'राजयोग' के नाम से विख्यात है । सामान्य गृहस्थ भी योग का लाभ उठा सकें तथा योगाभ्यास कर योग की उच्चतम अवस्था समाधि तक पहुंच सकें, इसकी व्यवस्था महर्षि पतंजलि ने की । यह पातंजल योग सूत्र की सबसे महत्वपूर्ण और बड़ी उपलब्धि है । उन्होंने योग के आठ अंगों का प्रतिपादन किया, जो अष्टांग योग के नाम से प्रसिद्ध हैं । आज पूरे संसार में इसी पद्धति पर आधारित योग- शिक्षा दी जा रही है । यह इस बात का प्रमाण है की पतंजलि की राजयोग की पद्धति विज्ञान की कसौटी पर खरी है । इसीलिए यह आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी स्वीकार्य है ।

इसके अतिरिक्त भी योग की अनेक शाखाएं प्रचलित हैं -जैसे नाद योग स्वर योग, कुंडलिनी योग, लय योग आदि। मार्ग कोई भी हो, लक्ष्य एक ही है- परमात्मा से साक्षात्कार। इसे राजयोग में समाधि का नाम दिया गया है। भक्तियोग में आराध्य के दर्शन की साध होती है। मीरा को कृष्ण का दर्शन होता है। रामकृष्ण परमहंस को माँ काली दर्शन देती हैं। सभी एक हैं। कोई अंतर नहीं है।

एक साधक के लिए यह दुविधा हो जाती है कि वह किस मार्ग पर चले। अतः सर्वप्रथम हमें सारे मार्गों का परिचय कर उनका अनुभव करना चाहिए, जैसे हम सब्ज़ी में नामक चखते हैं। इसके लिए

स्वयं के ऊपर प्रयोग करना आवश्यक होता है । हर मार्ग के कुछ आवश्यक तत्व हैं।जब हम उनका परीक्षण अपने शरीर और मन पर करते हैं तो हमें यह पता चलता है कि हमारा शरीर और मन उसके अनुकूल हैं या नहीं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, और अपनी मनोवृति के अनुसार किसी एक या अनेक मार्गों का चुनाव करना चाहिए। इस कार्य में गुरु की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। गुरु शिष्य के संस्कारों और मनोवृति को भलीभांति समझता है और उसी के अनुसार उसे दिशा निर्देश देता है कि कौन सा मार्ग उसके लिए उपयुक्त और सुगम है। शिष्य के लिए यही उचित है की वह गुरु के निर्देशों के अनुसार मार्ग का चुनाव करे और साधना पथ पर आगे बढ़े। परमात्मा की ओर अग्रसर हो। ईश्वर सदैव हमारी प्रतीक्षा में है।हम ही आगे नहीं बढ़ते।